कबीर एक समाज-सुधारक के रूप में –

कबीर का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ था, जब समाज अनेक बुराईयों से ग्रस्त था। छुआछूत, अंधविश्वास और रूढ़िवादिता का बोलबाला था, हिन्दू-मुसलमान आपस में संघर्ष कर रहे थे, धार्मिक पाखण्ड अपनी चरम सीमा पर था और धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थ की रोटियां धार्मिक कट्टरता एवं उन्माद के चूल्हे पर सेंक रहे थे। कबीर ने इसका डटकर मुकाबला और विरोध किया तथा सभी क्षेत्रों में फैली बुराईयों को दूर करने का भरपूर प्रयास किया। उन्होंने अपनी बात निर्भीकता से कही तथा हिन्दुओं और मुसलमानों को डँटकर फटकारा।

कबीर भक्त और कवि बाद में थे, वे सही अर्थों में समाज-सुधारक पहले थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है कि –

"कबीरदास बहुत कुछ को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने आजीवन सम्प्रदायवाद, बाह्याचार और बाहरी भेदभाव पर करारतम आघात किया था।"

कबीरदास स्वच्छंद विचारक कवि थे। वे मानवतावादी आस्था के साथ समाज में सुधार लाना चाहते थे। उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जहां भी कहीं प्रगति को रोकने वाली रूढ़ियां देखी वहीं उनका डटकर विरोध किया तथा बाहरी आडम्बरों को बढ़ावा देने वाले सभी धर्मों की खुलकर आलोचना की।

वास्तव में समाज सुधार और मानव कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने

Scanned with CamScanner

हिन्दू - मुसलमान दोनों के पाखण्डों का खण्डन किया तथा उन्हें सच्चे मानव धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने दोनों को कसकर फटकारा। वे हिन्दुओं के पाखण्डों का खण्डन करते हुए यह लिखते हैं -

ना हम पूजें देवी - देवता, ना हम फूल चढ़ाई।
ना हम मूरत धरे सिंहासन, ना हम घण्ट बजाई॥

तो मुसलमानों के पाखण्डों का खण्डन करते हुए लिखते हैं -

कांकर पाथर जोरि के मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

उन्होंने सच्ची बात यही बताई कि -

मोको कहां ढूंढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काबे कैलास में॥

कबीर ने मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए मन मंदिर में ही ईश्वर का निवास बताया। उन्होंने मूर्तिपूजा तथा उसके आडम्बरों को स्पष्ट रूप से नकारा तथा कहा -

पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।
घर की चाकी कोई न पूजे पीसि खाय संसार॥

यही नहीं वे दुनिया के इस बावलेपन का उपहास इन शब्दों में करते हैं -

दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चाकिया कोई न पूजे जोहि का पीसा खाय॥

कबीर रूढ़ियों एवं आडम्बरों के सतत विरोधी रहे। उन्होंने रोजा, नमाज, छापा, तिलक, माला, गंगास्नान और तीर्थाटन का सतत विरोध किया। वे कहते हैं -

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

Scanned with CamScanner

कबीर कहते हैं कि इस बाह्याचार में क्या रखा है। हिन्दू अपने देवताओं को पूज कर मर गए, योगी जटाएँ बाँधकर मर गए परन्तु इनमें से राम किसी को नहीं मिला—

देव पूजि हिन्दू मुये तुरक मुये हज जाई।
जटा बांधि योगी मुए, राम किनहू नहीं पाई॥

कबीर ने अपने समय में फैली छुआछूत की भावना का तीव्र विरोध किया। जाति-प्रथा की भावना के वे कट्टर निन्दक थे। वे हिन्दुओं से पूछते हैं कि—

जो तू बाँभन बाँभिनी जाया।
आन बाट है क्यों नहीं आया॥

तो मुसलमानों से भी प्रश्न करते हैं—

जो तू तुरक तुरकिनी जाया।
भीतर खतना क्यों न कराया॥

जाहिर है कि कबीर के इन प्रश्नों का जवाब न तो हिन्दुओं के पास है और न ही मुसलमानों के पास।

कबीर का युग सामाजिक विशृंखलता का युग था। ब्राह्मण वर्ग जाति अभिमान से ग्रस्त था। अपने को ऊंचा व तथा शूद्रों को नीचा मानकर उन्होंने समाज में जो छुआछूत की प्रथा चला रखी थी उसका कबीर ने डटकर विरोध किया। वे कहते हैं कि ऊंचे कुल में जन्म लेने मात्र से कोई ऊंचा नहीं हो जाता बल्कि ऊंचा वह होता है जिसकी करनी ऊंची होती है। स्वर्णकलश यदि मदिरा से युक्त है तो निन्दनीय है—

ऊंचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।
सुवरन कलश सुरा भरा साधु निन्दत होय॥

Scanned with CamScanner

कबीर ने समाज में व्याप्त हिंसा का विरोध हर स्तर पर किया। चाहे वह जीभ के स्वाद के लिए की गई हो या धर्म के नाम पर की जा रही हो। मुसलमान दिन में रोजा रखते हैं और रात में गाय को मारते हैं। ये दोनों विरोधी कार्य हैं, इससे भला खुदा कैसे प्रसन्न हो सकता है —

दिन में रोजा रखत है राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी कैसे खुशी खुदाय॥

कबीर कहते हैं कि हिंसा का परिणाम भी बुरा होता है। बकरी तो पत्तियां खाती है इस पापकर्म के कारण उसकी खाल खींची जाती है, किन्तु जो मनुष्य बकरी को खाता है उसका क्या हाल होगा —

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है तिनको कौन हवाल॥

कबीर अपने युग के प्रति पूर्ण सचेत थे। सत्य पर विशेष बल देते हुए कहते हैं—

सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय सांच है ताके हिरदय आप॥

अतः कबीर ने सम्पूर्ण समाज में व्याप्त वैषम्य का विरोध करके उसमें साम्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है। कबीर ने अपनी मर्मस्पर्शी वाणी द्वारा तत्कालीन धार्मिक पाखण्डों एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करके जनसाधारण को सरल-जीवन, सत्याचरण, सात्विक व्यवहार, पारस्परिक एकता, समता आदि की ओर उन्मुख करने का जो सराहनीय कार्य किया है, इसी कारण वे उच्चकोटि के समाज-सुधारक कहलाते हैं।

Scanned with CamScanner